© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section : Engineering and Technology

शुंगकालीन भारत में कृषि की दशा एवं दिशा : पुनरावलोकन

सत्येन्द्र कुमार सिंह
शोध छात्र
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में कृषि का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। वह भारतवासियों का प्राचीनतम एवं चिरस्थायी उद्योग है और प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के दीर्घकालिक ऐतिहासिक अन्तराल में वह भारतीय समाज के मूलभूत उद्योग के रूप में अपनी जड़े जमाये हुये हैं।[1] शुगों के बहुत पूर्व वैदिक काल में ही हम इस उद्योग से सुव्यवस्थित स्वरूप का परिचय पाते हैं, जिसका स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद–सहित अन्य संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों तथा सूत्र ग्रन्थों में विस्तार के साथ हुआ है। पालि साहित्य तथा जातक कथाओं में कृषि का बड़ा ही रोचक तथा सजीव वर्णन मिलता है, जिससे कृषि के नाना प्रकार के उपकरणों उसकी विविध–विधियों, कृषि की दृष्टि से उपयुक्त भूमि तथा उसकी अनेकानेक किस्मों, सिंचाई के कतिपय साधनों, बीज, खाद आदि पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। पाणिनी ने तो कृषि–उद्योग तथा इसमें कार्य करने वाले लोगों के बारे में बड़े विस्तार के साथ लिखा है। उन्होंने कृषि के लिए प्रयुक्त होने वाले अनेक तकनीकी शब्दों का भी अपनी अष्टाध्यायी में उल्लेख किया है, जिसकी व्याख्या पतंजलि, जो कि शुंगों के समकालीन थे, ने बड़े विस्तार के साथ महाभाष्य में प्रस्तुत की है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक प्रकार से तत्कालीन 'कृषि विज्ञान' की 'इनसाइक्लोपीडिया' है, जो कि मौर्य साम्राज्य के लिये मार्ग–दर्शक बनकर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में प्रबल सहायक बनी थी। मौर्यों द्वारा राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना में उनकी सुदृढ़ अर्थव्यवस्था की भूमिका अपरिहार्य थी, इसमें कृषि एवं नये उपनिवेशों की स्थापना का महत्व सर्वाधिक था। शुंगों को विस्तृत साम्राज्य मौर्यों से ही विरासत में मिला था इसलिए उनके द्वारा मौर्यों की प्रमुख आर्थिक नीति को अपनाना स्वाभाविक था।

उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि कृषि का सर्वप्रमुख उपकरण उन दिनों भी हल ही था। महाभाष्य में इसके लिये 'सीर', 'लांगल' तथा 'जित्य' शब्द प्रयुक्त हुये हैं।[2] उसका ढाँचा सम्भवतः वही था, जैसा कि पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में इंगित किया है, अर्थात् उसके मुख्यतः तीन भाग होते थे– 1. ईषा या हलस, 2.

बीच का भाग पात्र और 3. लोह–निर्मित कुशी।[3] हल आज की भांति उन दिनों में भी अधिकतर बैलों द्वारा ही खींचे जाते थे।[4] पतंजलि ने बैलों को गो, अनड़वान् और बलीवर्द कहा है।[5]

मनु ने उत्तम कृषि की दृष्टि से बैलों का शक्तिवान, निरोग तथा तेज होना आवश्यक बतलाया है।[6] हल के समान हो अथवा उसके कुछ ही कम महत्वपूर्ण दूसरा कृषि–उपकरण कुदाल अथवा फावड़ा था। इसका प्रयोग प्रायः कड़ी भूमि को तोड़ने अथवा हल की जोत से छुटे हुये खेत के कोनों को खोदने के लिये किया जाता था। पतंजलि ने इसका उल्लेख खनित्र, आखन, आख, आखर, आखनिक आदि अनेक स्थायी नामों से किया है।[7]

हल एवं कुदाल जो कि प्रमुख कृषि उपकरण थे, के अलावा कुछ अन्य कृषि उपकरणों के भी उल्लेख मिलते हैं। इन उपकरणों में हंसिया, रहट, चक्र, कोल्हू तथा बैलगाड़ी आदि प्रमुख थे। हंसियों का प्रयोग फसल को काटने के लिए रहट और चक्र का खेतों तथा फसलों की सिंचाई के लिये तथा बैलगाड़ियों का प्रयोग कटी हुयी फसलों की खेत से खलिहान तथा खलिहान से घर अथवा कोठार तक पहुँचाने के लिये किया जाता था।[8]

उपर्युक्त कृषि उपकरणों की सहायता से भारतीय कृषक सुचारू रूप से कृषि–कर्म करते थे। वे सर्वप्रथम हल–बैलों की सहायता से अपने खेतों को कई बार तथा सघन एवं गहरा जोत लेते थे। तत्पश्चात् वे उसमें ऋतु तथा खेत की प्रकृति के अनुसार बीज डालते थे। पतंजलि ने कम से कम दो–तीन बार खेतों को जोतना आवश्यक बतलाया है और उसके बाद ही उनमें ऋतु के अनुसार बीज डालने की सलाह दी है।[9] खेतों में बीज डालने की क्रिया भी बड़ी ही निपुणता तथा सावधानीपूर्वक की जाती थी। इसके लिये प्रायः कई[10] तरीके प्रयोग में लाये जाते थे, जैसे– बेर, पवेड़, चोवली आदि अष्टाध्यायी से इन तरीकों का आभास होता है।[11] महाभाष्य के 'बीजाकरोति' प्रयोग का आशय सम्भवतः बेर की बुआई से है, जैसा कि एक व्यक्ति हल की मूठ पकड़े बैलों के पीछे चले और दूसरा उसके पीछे–पीछे खेत में एक बीज डालता जाय'' आदि चित्रण से स्पष्ट है।[12] किसान कभी–कभी एक खेत में ही फसल उगाने के साथ ही उसमें एक साथ ही दो फसलें भी मिलाकर बोते और उगाते थे। इसमें प्रायः प्रधान और गौण फसलों का ध्यान रखा जाता था। पतंजलि ने उड़द के साथ तिल मिलाकर बोने का उल्लेख है।[13]

सावधानी–पूर्वक जोतने–बोने के साथ ही किसान सतर्कता के साथ अपने खेतों और फसलों की सुरक्षा भी करते थे। खेतों के प्रायः जंगलों व चारागाहों से सटे होने के कारण जंगली एवं पालतू जानवरों द्वारा उनके चटकर जाने का भय बराबर बना रहता था। इनसे बचने के लिये कृषक सर्वप्रथम अपने खेतों के चतुर्दिक ऊँची–ऊँची बाड़[14] अथवा गहरी खाइयां खुदवा देते थे।[15] पतंजलि ने खेतों की सुरक्षा के कुछ अन्य उपाय भी बतलाये है। यथा 'यवचाल'[16] रखवाले की नियुक्ति तथा खेतों में 'चंचा'[17] घास का आदमी खड़ा करना आदि।

आज की ही भाँति उन दिनों भी अच्छे उत्पादन के लिये पर्याप्त मात्रा में जलापूर्ति आवश्यक समझी जाती थी। इसकी पूर्ति कभी–कभी प्रकृति जल बरसाकर स्वयं कर देती थी, किन्तु बहुधा कृषकों को ही इसकी व्यवस्था करनी पड़ती थी। इसके लिये वे कूप, तालाब, नहर तथा बावड़ी आदि व्यक्तिगत अथवा सामूहिक प्रयासों से बनवाकर उनके जल से अपने खेत की फसलों की सिंचाई करते थे। कभी–कभी राज्य भी उसके लिये प्रत्यक्ष प्रयत्न करता था। कलिंगराज खारवेल द्वारा एक विशाल नहर का तनसुलिय मार्ग होकर अपनी राजधानी कलिंग तक निर्माण राजकीय प्रयास का ज्वलन्त उदाहरण है।[18] व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयासों से निर्मित कूप, तालाब, बावड़ी के इस युग में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं।[19]

यद्यपि उन दिनों भूमि की उर्वरा शक्ति पर्याप्त समृद्ध थी तथापि हम भारतीय कृषकों द्वारा अच्छे उत्पादन के लिये खाद के प्रयोग का उल्लेख पाते है। यह खाद प्रायः हड्डी, गोबर आदि की होती थी। पतंजलि ने कारीष ओर आरण्य गोमय का उल्लेख किया है। साथ ही उन्होंने आर्द्रगोमय, शुष्क गोमय आदि का भी उल्लेख विभिन्न अर्थों में किया है।[20] महाभाष्य के इस गोमय प्रयोग–बाहुल्य के आधार पर डॉ0 प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने यह मत व्यक्त किया है कि तत्कालीन लोग गोबर का यथोचित उपयोग करते थे और चूँकि अतिप्राचीन काल से ही गोबर का उपयोग खाद के रूप में होता आ रहा था, अतः भविष्यकालीन कृषक भी इसका उपयोग अपनी फसलों के खाद्यकरण के उपयोग में करते रहे होंगे।[21] उनके द्वारा किये जाने वाले प्रचुर उत्पादनों के आधार पर भी इस अनुमान की पुष्टि होती है, जैसा कि धान्यों की सुरक्षार्थ विशाल धान्यागारों के निर्माण तथा कतिपय खाद्यानों के विदेशों को निर्यात आदि उल्लेखों से प्रमाणित होता है।[22] किसान वर्ष भर के अपने दैनिक उपयोग के लिये अनाज घरों में रख लेने के पश्चात् शेष अनाज कोठारों में सुरक्षित रख देते थे, जहाँ से वे उसे भविष्य के अन्य प्रयोगों–विक्रय तथा बोने आदि में लाते थे।

उस समय के प्रमुख धान्य गेहूँ, जौ, चना, धान, साँवा, कोदो, तिल, अलसी तथा गन्ना आदि थे।[23] गेहूँ, चना, जौ आदि प्रमुख वासन्ती फसलों थीं, जबकि धान, सांवा, कोदो, तिल, अलसी, गन्ना आदि वर्षों के अनाज, तिलहन तथा तन्तु वृक्ष (गन्ना) थे। पतंजलि ने तीन प्रकार की फसलों का उल्लेख किया है।[24] 1. कृष्टपच्य, 2. कृष्टपाक्य, 3 अकृष्टपच्य। अच्छी तरह खेतों में जो धान्य बिना बोये ही उग आते थे, उन्हें कृष्टपच्य कहा जाता था, किन्तु जो धान्य इन खेतों में बोकर उगाये जाते थे, उन्हें कृष्टपाक्य कहा जाता था। कृष्टपाक्य के अन्तर्गत खाद्यान्न दालें, गन्ना, फल, सिल्य और लाक्षा आदि फसलें आती थीं। अकृष्टपच्य के अन्तर्गत नीवार, कुकुनी, सांवा आदि की गणना की गई है। ये अकृषित भूमि पर बिना बोये ही अपने आप उपजने वाली फसलें थीं। इन्हें में जंगली अनाज भी कह सकते हैं।[25]

इस काल में हमें धान की कई किस्मों का उल्लेख मिलता है, जिससे यह पता चलता है कि धान उन दिनों एक लोकप्रिय खाद्यान्न था। ब्रीहि, शालि, कलमा आदि धान की प्रमुख कोटियाँ थी। ब्रीहि सम्भवतः

सामान्य धान था, जबकि शालि साठ दिनों में पकने वाला एक विशेष कोटि का धान था। इसे शारद भी कहा जाता था।[26] कलमा रोप कर पैदा किया जाने वाला धान था। गन्ना भी इस काल की प्रमुख फसल थ, जिसे कोल्हू में पेरकर गुड़ अथवा शक्कर बनाया जाता था।[27] पेरिप्लस द्वारा उल्लिखित भारत द्वारा विदेशों को निर्यात किये जाने वाले खाद्यानों में 'शर्करा' का भी नाम आया है जो कि गन्ने के पर्याप्त उत्पादन का द्योतक है।[28]

इसके अतिरिक्त महाभाष्य में कुछ अन्य फसलों का भी उल्लेख हुआ है, यथा– यव, माष, मूंग, तिल, सर्षप, मधूक, मर्मुट, उमा, भङ्ग, कार्पास, कुस्तुम्बुरु (धनिया), हरिद्रा (हल्दी), शण (सन्) आदि। उन दिनों खाद्यान्नों में यव का स्थान शालि के बाद था। इसका प्रयोग यज्ञादि में आहुति के लिये होता था। व्रत में यव से तैयार की गई यवागू खाने की प्रथा थी। पतंजलि ने लिखा है कि मद्र और उशीनर जनपदों में यव की खेती खूब होती थी।[29] डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने यव बोने का सर्वोत्तम समय श्रावणी पूर्णिमा को बतलाया है।[30] आजकल यव प्रायः शिशिर ऋतु में बाये तथा वसन्त में काटे जाते हैं। माष (मसूर) एक प्रकार की दाल थी, जो कि महत्व की दृष्टि से यव के बाद अर्थात् तीसरे स्थान पर आती थी।[31] इसे प्रायः शारदी पूर्णिमा या उसके आस–पास बोया जाता था।[32] कभी–कभी उसे तिल के साथ मिलाकर भी बोया जाता था।[33] राजमाष भी माष का ही एक भेद था। स्वास्थ्य की दृष्टि से माष का सेवन उत्तम नहीं बतलाया गया है, क्योंकि इससे वायु–विकार उत्पन्न होने की सम्भावना रहती थी। सम्भवतः इसीलिये माष को 'शर्धजहं' भी कहा गया है।[34] मास के साथ ही मूंग का भी उल्लेख दाल के रूप में हुआ है। पतंजलि ने इसे शदक कहा है।[35] जो कि इसके शरद ऋतु में बोने का द्योतक है।

अन्न और दालों के अतिरिक्त तिलहन की खेती के भी उल्लेख मिलते हैं। पतंजलि ने दो प्रकार के तिलों का उल्लेख किया है– 1. कृष्ण तिल एवं 2. श्वेत तिल।[36] तिल के अलावा सर्षप (सरसों) भी एक प्रमुख तिलहन था। भाष्यकार ने इनकी भी दो छोटे–बड़ी कोटियों का उल्लेख किया है।[37] उमा या अलसी भी एक प्रकार का तिलहन था। पतंजलि ने उमा–कट (अलसी की खली) का उल्लेख किया है।[38] भङ्ग, सन, कार्पास (कपास) आदि रस्सी अथवा कपड़े बनाने के काम आते थे। इनकी भी खेती का उल्लेख उन दिनों मिलता है।[39]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि शुग काल में कृषि उद्योग प्रगति पर था। कृषक कृषि–कर्मों का सम्यक् ज्ञान रखते थे। यह उनके व्यक्तिगत अनुभव और सूझ–बूझ का प्रतिफल था, जिसका कि वे अपने उत्पादनों के लिये भरपूर उपयोग करते थे। धान्यों के सुरक्षार्थ कृषकों द्वारा विशाल धान्यागारों का निर्माण तथा विदेशों को अनेकानेक खाद्यान्नों का निर्यात उनके प्रचुर उत्पादन का उल्लेखनीय प्रमाण है। कृषि उद्योग की समृद्धता का एक कारण यह भी था कि धार्मिक तथा जीवन के लिए किया होगा। यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष

उल्लेख हमें कहीं नहीं मिल पाता। अन्य क्षेत्रों में मौर्य शासकों से पर्याप्त पृथकता रखते हुये भी शुंग नृपति आर्थिक क्षेत्रों में मौर्यों के अनुयायी थे। यह सर्वज्ञात है कि मौर्यों द्वारा व्यवहृत राष्ट्रीय अर्थनीति महामात्य कौटिल्य द्वारा निर्देशित थी और कौटिल्य ने कृषि को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की धुरी बतलाते हुये सबसे अधिक बल कृषि के उत्थान तथा विकास पर ही दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य ने कृषि की प्रगति और सुरक्षा में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया और उसमें सक्रिय योगदान दिया। राज्य के एक विस्तृत भू–भाग की सिंचाई के लिये सुदर्शन नामक विशाल झील का निर्माण और 'सीताध्यक्ष' जैसे कृषि अधिकारियों की नियुक्ति इसका ज्वलन्त प्रमाण है। संभवतः शुंग–नृपतियों ने भी इस पूर्ववर्ती परम्परा को कायम रखने का यथाशक्ति प्रयास किया होगा। यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष उल्लेख हमें कहीं नहीं मिल पाता।

संदर्भ–ग्रन्थ :

1. कृषि के उद्‌भव और विकास के विस्तृत विवरण के लिये द्रष्टव्य, डॉ0 अच्छे लाल कृत, ''प्राचीन भारत में कृषि' नामक पुस्तक की भूमिका।
2. महाभाष्य, 4/4/81, 6/2/1 तथा 3/1/17
3. अष्टाध्यायी, 3/2/183 तथा 4/1/42
4. विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य, डॉ0 अच्छेलाल, प्राचीन भारत में कृषि, पृ0 116
5. महाभाष्य, 1/2/72
6. मनुस्मृति, 4/67–68
7. महाभाष्य, 3/3/125
8. डॉ0 अच्छे लाल, पूर्वोद्धृत, पृ0 173–23
9. महाभाष्य, 5/4/59
10. डॉ0 अच्छे लाल ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत में कृषि', पृ0 74 में बुआई के इन तरीकों की व्याख्या करते हुये लिखा है 'हल चलाते समय बीज कुंड़ में गिरता जाय, इसे 'बेर' की बुआई कहते है। खेत में बीज छीटकर फिर उसमें हल चलाने का नाम 'पवेड़' की बुआई है तथा जोती हुयी भूमि में बीज को हाथ से गाड़ना 'चोवली कहलाता है।
11. अष्टाध्यी, 5+4/8
12. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलि कालीन भारत, पृ0 254
13. महाभाष्य, 2/3/19
14. महाभाष्य, 8/4/8
15. बृहत्कल्प भाष्य पीठिका, 721

16. महाभाष्य, 6/2/78

17. महाभाष्य, 1/1/52

18. Jayaswal, K.P., ‘A Further Notes on the Hathigumphan Inscription’, JBORS. Vol. II, pp. 23-24

19. द्रष्टव्य, डॉ0 अच्छे लाल, प्राचीन भारत में कृषि, पृ0 153–159

20. महाभाष्य, 3/2/24

21. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलि कालीन भारत, पृ0 271

22. Bose, A.N. Social and Rural Economy of Northern India, 1931

23. महाभाष्य, 2/3/1, 1/3/36

24. वही, पृ0 3/1/114

25. द्रष्टव्य, डॉ0 अच्छे लाल, प्राचीन भारत में कृषि, पृ0 128–29

26. काशिका, 4/3/43

27. महाभाष्य, 5/2/29, अष्टा0 8/4/5

28. Periplus of the Erythrean sea, Ed. W.H. Schoff, London, 1912

29. महाभाष्य 4/1/90

30. Agravala, V.S. India in the time of Panini, p. 207

31. महाभाष्य, 4/1/48

32. काशिका, 4/5/45

33. काशिका, 2/3/193

34. महाभाष्य, 3/2/28; प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत, पृ0 265

35. महाभाष्य, 4/3/27

36. महाभाष्य, 2/1/57

37. महाभाष्य, 5/3/55

38. महाभाष्य, 5/2/29

39. महाभाष्य, 4/1/55